



2026:AHC-LKO20461

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ

रिट - ए सं. - 8351/ 2024

अश्वनी कुमार

.....याचिकाकर्ता(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा, प्रमुख सचिव,

महिला कल्याण विभाग, लखनऊ एवं अन्य

.....प्रतिवादी(गण)

याचिकाकर्ता (गण) के अधिवक्ता : जगदंबिका प्रसाद त्रिपाठी, इंद्र जीत
यादव, विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी

प्रतिवादी (गण) के अधिवक्ता : सी.एस.सी.

न्यायालय संख्या - 7

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

- याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जगदंबिका प्रसाद त्रिपाठी तथा विपक्षीगण के विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।
- आदेश दिनांक- 25.09.2023 और पुनर्विलोकन दिनांक- 14.08.2024 को चुनौती देते हुए यह याचिका दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता की तीन वेतन-वृद्धियों को संचयी प्रभाव से रोकने की दीर्घ शास्ति देकर और 'परिनिंदा' का दंड देकर दंडित किया गया है।
- याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि जिला परिवीक्षा अधिकारी के पद पर रहते हुए, अपनी सेवा के दौरान, उसे

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। समस्त कानूनी और सरकारी उद्देश्यों हेतु, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



28.04.2020 को एक आरोप-पत्र जारी किया गया था, जिसमें पाँच आरोप लगाये गये थे; जिसका जवाब 15.06.2020 को दिया गया था। यह भी निवेदन किया गया कि इसके बाद, 28.10.2020 को जाँच आख्या सौंपी गई, जिसके परिणामस्वरूप 25.09.2023 को सज़ा का आदेश पारित किया गया। इस आदेश के विरुद्ध, उ०प्र० सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियमावली 1999 के नियम 14 के तहत राज्य सरकार के समक्ष एक पुनर्विलोकन याचिका दायर की गई थी, जिसे 14.08.2024 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया है।

4. यह निवेदन किया गया है कि चूंकि दीर्घ शास्ति अधिरोपित करने के लिए कार्यवाही प्रारंभ की गई थी, अतः विपक्षी पक्षों के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें नियमावली 1999 के नियम 7 में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन करना चाहिए था, विशेष रूप से मौखिक जांच आयोजित की जानी चाहिए थी।
5. यह निवेदन किया गया है कि जांच आख्या को देखने मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाएगा कि याचिकाकर्ता को सभी पांचों आरोपों का दोषी केवल उसके द्वारा प्रस्तुत जवाब तथा दिनांक 30.10.2018 की शिकायत और संबंधित अधिकारियों की कुछ रिपोर्टें एवं पत्रों के आधार पर ही पाया गया है।
6. यह निवेदन किया गया है कि जांच आख्या से यह स्पष्ट हो जाएगा कि न तो शिकायतकर्ता को, और न ही उन अधिकारियों में से किसी को—जिनकी रिपोर्टें पर भरोसा किया गया था—जांच की कार्यवाही के दौरान उपर्युक्त दस्तावेजों को प्रमाणित या पुष्ट करने के लिए कभी भी पेश किया गया। उन्होंने आगे यह भी निवेदन किया है कि किसी भी प्रकार की कोई मौखिक जांच कभी आयोजित नहीं की गई, जिसमें याचिकाकर्ता को शिकायतकर्ता और उन रिपोर्टों के लेखकों से—जिन पर भरोसा किया गया है—जिरह करने की अनुमति दी गई हो। अतः, नियमावली 1999 के 'नियम 7' के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है।

7. यह भी निवेदन किया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'भारत संघ व एक अन्य बनाम एस. सी. पराशर' (2006) 3 एस.सी.सी.

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। समस्त कानूनी और सरकारी उद्देश्यों हेतु, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

167 मामले में प्रतिपादित कानून यह दर्शाता है कि एक ही आदेश द्वारा लघु व दीर्घ, दोनों तरह की शास्तियां नहीं दी जा सकतीं। उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा '**रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य**' (मनु/एस.सी./8456/2008: (2009) 1 एस.सी.सी. (एल. और एस.) 398) और '**उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा**' ((2010) 2 एस.सी.सी. 772) मामलों में दिए गए निर्णयों पर भी भरोसा जताया है।

8. विपक्षीगण की ओर से विद्वान राज्य के अधिवक्ता ने 28.11.2024 के प्रति शपथ पत्र के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत निवेदनों का खंडन किया है। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता पर यह सज़ा इसलिए लगाई गई है क्योंकि उसने उच्च अधिकारियों द्वारा जारी निर्देशों की अवहेलना की थी, और याचिकाकर्ता के विरुद्ध 'दीर्घ शास्ति' लगाने के लिए नियमावली 1999 के 'नियम 7' के प्रावधानों का पालन किया गया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि तथ्यों को ध्यान में रखते हुए—विशेषकर यह कि जाँच की कार्यवाही में आरोप सिद्ध पाए गए थे—ये सज़ा के आदेश, 'उ०प्र० लोक सेवा आयोग' द्वारा दी गई स्वीकृति के बाद ही पारित किए गए हैं। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि इन आक्षेपित आदेशों को पारित करने में कानून की कोई मौलिक त्रुटि नहीं है; विशेष रूप से उस पुनर्विलोकन याचिका के संबंध में, जिसे जापन में इंगित सभी तथ्यों की जाँच करने के बाद ही अस्वीकार किया गया था। विद्वान् राज्य अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि याचिकाकर्ता पर लगाया गया आरोप काफी गंभीर था, और चूंकि यह बेसहारा महिलाओं की पेंशन राशि को अयोग्य महिलाओं के खातों में स्थानांतरित करने से संबंधित था, जिससे पर्यवेक्षणीय दायित्वों में लापरवाही स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत निवेदनों पर विचार करने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात्, जिस पहलू पर विचार किया जाना अपेक्षित है, वह यह है कि क्या

अनुशासनिक कार्यवाही में नियमावली 1999 के नियम 7 में यथा-निर्दिष्ट प्रावधानों एवं प्रक्रिया का पालन किया गया था अथवा नहीं?

10. इस संबंध में विचार करते हुए, इस न्यायालय ने प्रस्तुत जांच आख्यामय आवरण पत्र दिनांकित- 28.10.2020 का अवलोकन किया है; और इसके अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता पर लगाए गए आरोपों के संबंध में, साक्ष्य न केवल शिकायतकर्ता संदीप कुमार और उनकी शिकायत दिनांक 30.10.2018 का उल्लेख करते हैं, बल्कि दिनांक 27.11.2018, 29.12.2018, 11.12.2018 और 22.11.2018 की रिपोर्टों के साथ-साथ अन्य रिपोर्टों की ओर भी संकेत करते हैं।
11. हालाँकि, जाँच आख्या को देखने से यह पता चलता है कि जाँच की कार्यवाही के दौरान न तो शिकायतकर्ता को और न ही ऊपर बताई गई रिपोर्टों के लेखकों को कभी पेश किया गया या समन भेजा गया, ताकि मौखिक जाँच हो सके और याचिकाकर्ता को शिकायतकर्ता तथा उन रिपोर्टों के लेखकों से जिरह करने का अवसर मिल सके। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आक्षेपित आदेश में ऊपर बताई गई शिकायत और रिपोर्टों पर ही भरोसा करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि याचिकाकर्ता पर लगाए गए आरोप सही थे।
12. इस न्यायालय की सुविचारित राय में, जब जांच अधिकारी न केवल शिकायत पर, बल्कि आरोप-पत्र में साक्ष्य के रूप में दर्शाई गई रिपोर्टों पर भी भरोसा कर रहे थे, तो जांच अधिकारी का यह कर्तव्य था कि वे न केवल शिकायतकर्ता बल्कि ऐसी रिपोर्टों के लेखकों की उपस्थिति भी सुनिश्चित करते, ताकि याचिकाकर्ता को उनसे प्रति-परीक्षा करने का अवसर मिल सकता।
13. नियमावली 1999 का नियम 7 पीठासीन अधिकारी को यह अधिकार भी देता है कि वह जांच की कार्यवाही के दौरान पेश किए गए ऐसे साक्षियों से प्रश्न पूछ सके, ताकि दोषी कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों/प्रभारों की सत्यता का पता लगाया जा सके।

14.माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रूप सिंह नेगी और सरोज कुमार सिन्हा (उपरोक्त) के मामलों में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

15.रूप सिंह नेगी (उपरोक्त) का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

निस्संदेह, विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी पर लगाए गए आरोप सिद्ध पाए जाने चाहिए। जाँच अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह पक्षों द्वारा अभिलेख पर लाए गए तथ्यों पर विचार करते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुँचे। जाँच अधिकारी द्वारा जाँच के दौरान सभी अभियुक्तों के विरुद्ध एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को, अपने आप में, अनुशासनिक कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी साक्षी की जाँच नहीं की गई। प्रबंधन के साक्षियों ने केवल दस्तावेज पेश किए और उनकी सामग्री को साबित नहीं किया। जाँच अधिकारी ने, अन्य बातों के अलावा, प्रथम सूचना रिपोर्ट पर भरोसा किया, जिसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता था।

16.सरोज कुमार सिन्हा (उपरोक्त) का प्रासंगिक अंश निम्नलिखित है:

27. ऊपर बताए गए उप-नियम को सिर्फ पढ़ने से यह साफ़ हो जाता है कि जब प्रतिवादी आरोप-पत्र पर अपना स्पष्टीकरण देने में नाकाम रहा, तो जांच अधिकारी की यह ज़िम्मेदारी थी कि वह जांच में उसकी उपस्थिति के लिए एक तारीख तय करे। जांच अधिकारी सिर्फ उसी स्थिति में जांच को एकतरफ़ा आगे बढ़ा सकता है, जब सरकारी कर्मचारी, नोटिस मिलने के बावजूद, तय तारीख पर उपस्थित होने में नाकाम रहे। ऐसी परिस्थितियों में भी, जांच अधिकारी की यह ज़िम्मेदारी है कि वह आरोप पत्र में बताए गए साक्षियों के बयान दर्ज करे। चूंकि सरकारी कर्मचारी अनुपस्थित हैं, इसलिए वह ज़ाहिर तौर पर साक्षियों से जिरह करने का लाभ खो देगा। लेकिन फिर भी, आरोपों को साबित करने के लिए विभाग को जांच अधिकारी के सामने

जरूरी साक्ष्य पेश करने होते हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि इस आरोप से बचा जा सके कि जांच अधिकारी ने अभियोजक और न्यायाधीश, दोनों की भूमिका निभाई है।

"28. अर्ध-न्यायिक अधिकार के तहत काम करने वाला एक जांच अधिकारी, एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उससे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि हो। उसका काम विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जांच करना है—भले ही दोषी अधिकारी वहां उपस्थित न हो—ताकि यह देखा जा सके कि क्या वे अप्रत्याशित साक्ष्य जिनका खंडन न किया गया हो, यह मानने के लिए पर्याप्त हैं कि आरोप सिद्ध हो गए हैं।" प्रस्तुत मामले में, उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी भी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेजों को सिद्ध नहीं माना जा सकता; और न ही इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उन्हें विचार में लिया जा सकता था कि प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं।

17. इस मामले के मौजूदा तथ्यों और परिस्थितियों पर उपर्युक्त निर्णयों को लागू करने पर, यह स्पष्ट है कि जांच अधिकारी को न केवल शिकायतकर्ता को, बल्कि उन रिपोर्टों के लेखकों को भी बुलाकर या उनकी उपस्थिति अनिवार्य करके मौखिक जांच की अनुमति देनी चाहिए थी, जिन पर जांच रिपोर्ट में भरोसा किया गया है; जैसा कि नियमावली 1999 के नियम 7 में भी परिकल्पित है।

18. जांच अधिकारी द्वारा ऐसी कार्यप्रणाली का पालन न किए जाने से, जांच की कार्यवाही दूषित हो जाती है।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एस.सी. परशार (उपरोक्त) के मामले में भी, स्पष्ट रूप से यह बात कही है कि एक ही आरोप के संबंध में और एक ही आदेश के माध्यम से दीर्घ और लघु, दोनों तरह की शास्तियां नहीं दी जा सकतीं।



20. दुर्भाग्यवश, दंड आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत पुनर्विलोकन याचिका को भी, नियमावली 1999 के नियम 7 के पहलुओं अथवा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों पर विचार किए बिना ही अस्वीकृत कर दिया गया है।

21. ऊपर की गई चर्चा को देखते हुए, 25.09.2023 का दंडादेश और 14.08.2024 का पुनर्विलोकन आदेश, 'उत्प्रेषण' प्रकृति की एक रिट जारी करके निरस्त किए जाते हैं; साथ ही, विपक्षी पक्षों को यह स्वतंत्रता दी जाती है कि वे याचिकाकर्ता पर लगाए गए आरोपों के संबंध में, साक्ष्य के चरण से, फिर से जाँच कर सकते हैं। यदि विपक्षी ऐसी जाँच कार्यवाही जारी रखते हैं, तो उसे ऊपर दिए गए निर्णयों और टिप्पणियों के आलोक में, शीघ्रता से संपन्न और विनिश्चित किया जाएगा।

22. परिणामस्वरूप, याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। पक्षकार अपना-अपना खर्च स्वयं वहन करेंगे।

(न्यायमूर्ति, मनीष माथुर)

20 मार्च, 2026

सुबोध/-